मुसलमानों की घर वापसी : क्यों और कैसे ?

अस्त्र-शस्त्र का उत्तर अस्त्र-शस्त्र से देना उचित है। लेकिन विचारों का उत्तर तो विचार ही हो सकता है। किसी विचार, किसी लेख-कविता या पुस्तक के उत्तर में तलवार निकालना मजबूती नहीं, कमजोरी की निशानी है। किन्तु अरब से लेकर यूरोप, एसिया, अफ्रीका तक, हर कहीं इस्लामी नेता और संगठन सरल, संयत, वैचारिक संघर्ष से बचते हैं। इसे सदैव हिंसा से दबाने की कोशिश करते हैं। सदियों से, बल्कि आरंभ से ही, इस में कोई बदलाव नहीं आया है। स्वयं प्रोफेट मुहम्मद ने अपने विचारों पर किसी के प्रतिवाद, संदेह का यही उत्तर दिया था।

तब क्या इस्लाम कागजी शेर नहीं है? एक दुर्बल, भयभीत मतवाद, जो केवल धमकी, हिंसा, छल-कपट, अनुचित रूप से उठाई जा रही विशेष सुविधाओं, अनुचित-असमान नियमों के बल से चल रहा है। ऐसा मत-विश्वास कितने दिन चलता रह सकता है? यह एक बुनियादी प्रश्न है, जिस से भारत और वर्तमान विश्व की कई समस्याएं जुड़ी हुई हैं।

दुर्भाग्यवश, इस प्रश्न को भारतीय मुसलमानों के बीच रखने के बदले उन्हें राजनीतिक मतवादों में उलझाए रखा जाता है। उदाहरण के लिए, भारत के साथ जम्मू-कश्मीर के पूर्ण एकीकरण, या नागरिकता संशोधन कानून के विरोध में उन्हें उठाया जाता है। लेकिन कश्मीर का विषय ऐसे रखा जाता है, मानो यह मात्र 67 वर्ष पहले से चल रहा मामला हो। कश्मीर तो हजारों वर्ष पुराना क्षेत्र और संस्कृति है। क्या उस हजारों वर्ष के इतिहास से यहाँ मुसलमानों का कोई संबंध नहीं? सारी चर्चा राजनीतिक इस्लाम, और उस का वर्चस्व बनाए रखने की दृष्टि से की जाती है। मानो वह उद्देश्य तो स्वयंसिद्ध हो, जिस पर प्रश्न उठाना ही अनुचित हो। इसी कारण यहाँ हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी भ्रमित और झूठी बंदिशों में फँसे रहते हैं। इस से किसी का भला नहीं हुआ है।

सौभाग्यवश, आज दुनिया में एक दूसरी प्रक्रिया भी चल रही है। मुस्लिम जगत में विवेकशील पुनर्विचार भी चल रहा है। कूनराड एल्स्ट के शब्दों में, बाहरी भौतिक रूप में अभी मुस्लिम आबादी, संगठन, संस्थान, आदि बढ़ रहे हैं। किन्तु मुसलमानों के आंतरिक मनोजगत में दुविधा और संदेह भी बढ़ रहे हैं। इन दो प्रक्रियाओं के बीच प्रतियोगिता-सी चल रही है। जिम्मी (इस्लाम के सहयोगी गैर-मुसलमान), जिन्हें भारत में सेक्यूलर-वामपंथी-गाँधीवादी आदि कहा जाता है, वे लोग पहली प्रक्रिया को मदद दे रहे हैं। जबकि विवेकशील लोग दूसरी प्रक्रिया को। इस प्रतियोगिता के अंतिम परिणाम पर सस्पेंस जरूर है, किन्तु कोई संदेह नहीं।

आखिर यह बात देखने से मुसलमान कैसे बच सकते हैं कि हिन्दू लोग भी आप्रवासी के रूप में सारी दुनिया में विभिन्न समुदायों के साथ रहते हैं। लेकिन उन के साथ किसी समुदाय के झगड़े का कहीं से कोई समाचार नहीं आता ? जबकि मुसलमानों का हर कहीं, हर समुदाय के साथ झगड़ा है। बल्कि, जहाँ दूसरे समुदाय नहीं हैं, वहाँ उन की दूसरे मुसलमानों से वैसी ही हिंसक लड़ाई है। ऐसा क्यों ? इस पर स्वयं असंख्य मुसलमानों का ध्यान गया है। क्या उन के मजहबी मतवाद में ही कोई चीज है जो इस हालत का कारण है ? प्रसिद्ध लेखक सलमान रुशदी ने कई वर्ष पहले यह प्रश्न भी उठाया था।

सर्वविदित रूप से इस्लामी सिद्धांत के दो भाग हैं – ईश्वर संबंधी और राजनीति संबंधी। ईश्वर संबंधी विचार इस्लाम का छोटा हिस्सा हैं, लगभग 14 प्रतिशत। जिस में अल्लाह, अखीरत, और जन्नत-जहन्नुम की धारणाएं हैं। किन्तु इस्लामी मत का बड़ा भाग राजनीतिक है, जिस से काफिर, जिहाद, जजिया, शरीयत, जिम्मी, आदि धारणाएं संबंधित हैं। इस राजनीतिक इस्लाम का मूल आधार दूसरों, यानी गैर-मुस्लिमों ('काफिरों') को बर्दाश्त नहीं करना है। उदाहरण के लिए, कुरान (2:216) मूर्तिपूजक धर्म को हत्या से भी गर्हित पाप बताता है। इस प्रकार मुसलमानों को हिन्दू, बौद्ध, जैन, आदि तमाम लोगों को सर्वाधिक घृणित मानना सिखाता है। कुल मिलाकर कुरान में 111 आयतें जिहाद को समर्पित हैं। फिर, सीरा (प्रोफेट मुहम्मद की जीवनी) में 67% शब्द जिहाद से संबंधित हैं। हदीस (प्रोफेट मुहम्मद के वचन और कार्य) में 21% सामग्री जिहाद के बारे में हैं। कुछ लोग जिहाद को मुख्यत: 'आत्म-सुधार' कहते हैं। किन्तु संपूर्ण इस्लामी शास्त्र (सीरा+ कुरान + हदीस) में यह नगण्य-सा हिस्सा है। हदीसों में 98% विवरण सशस्त्र-हिंसा से संबंधित हैं। सुन्ना (सीरा और हदीस) और कुरान में बार-बार दुहराई गई बात है कि दूसरों से इस्लाम कबूल करवाओ, यहूदियों-क्रिश्चियनों को जिम्मी बना कर हीन अपमानित हालत में रखो, उन से जजिया टैक्स लो, उन्हें भगाओ या मार डालो।

इस प्रकार, राजनीतिक इस्लाम मुख्यत: काफिरों (गैर-मुसलमानों) के प्रति व्यवहार है। इस का सिद्धांत-व्यवहार काफिरों के विरुद्ध नितांत असहिष्णुता और हिंसा से भरा है। यही सारी दुनिया में उस का वास्तविक इतिहास भी रहा है, जो पिछले चौदह वर्षों के मुस्लिम साहित्य में ही खुल कर एक समान मिलता है। चूँकि उस मूल सिद्धांत-ल्यवहार को इस्लामी ईमाम, आलिम-उलेमा आज भी पूर्णत: सही और यथावत् अनुकरणीय मानते हैं, इसलिए उस के नतीजों का हिसाब करना चाहिए। विशेषकर काफिरों को! यह उन का अधिकार ही नहीं, कर्तव्य भी है।

लेकिन राजनीतिक इस्लाम के सिद्धांत-व्यवहार से आज तक हुए, और अभी भी हो रहे परिणामों पर मुसलमानों को भी सोचना ही होगा। इस ने काफिरों को ही नहीं, मुसलमानों को भी प्रभावित किया है। अन्यथा उन के अपने, मुस्लिम समाजों की अशान्ति की मूल वजह पर पर्दा पड़ा रहेगा। इस बात पर कि राजनीतिक इस्लाम और संपूर्ण मानव-समाज, जीव-जगत, एवं ब्रह्मांड की सचाई के बीच ताल-मेल न है, न हो सकता है। इस के सिवा मुस्लिम अशान्ति के बाकी सारे कारण कम महत्वपूर्ण हैं।

इस समस्या का समाधान सैनिक तरीके से नहीं, बल्कि शिक्षा में है। ध्यान दें, कुरान में असंख्य बार कई प्रसंगों में 'प्रमाण', 'स्पष्ट प्रमाण', की बातें की गई है। अत: मुसलमान किसी विचार-बिन्दु, विषय में प्रमाण, सबूत, एविडेंस के महत्व से परिचित हैं। केवल उन्हें प्रमाण वाली कसौटी को उन विचारों, कानूनों, विवरणों, दलीलों पर भी लागू करके देखने की जरूरत है जिन्हें वे स्वत:-प्रमाणिक मानते रहे हैं।

जैसे, मूर्तिपूजकों को घृणित समझना ; इस्लाम से पहले या बाहर के मानव-समाजों को मूर्ख मानना ; जीने के बदले मरने को अधिक अच्छा मानकर 'जन्नत' पाने के लिए हर तरह के चित्र-विचित्र काम करना ; जिहाद को सब से बड़ा कर्तव्य समझना ; मनुष्य को गुलाम बनाकर बेचना-खरीदना ; स्त्रियों को वस्तु-संपत्ति मात्र भोग रूप में देखना ; आदि मान्यताओं को विवेक से देखने की जरूरत है। ये मान्यताएं कोई ईश्वरीय देन या 'सर्वकालिक सत्य' नहीं हैं – इस की परीक्षा की जानी और शिक्षा दी जानी चाहिए।

लेखक राजनीति विश्लेषक हैं।

(पुस्तक अंश- अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 128)

साभार- https://www.nayaindia.com/ से